International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979
Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 5; Issue 4; April 2018; Page No. 89-94

रवीन्द्रनाथ टैगोर के धार्मिक एवं शैक्षिक विचारो का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 कृष्ण बहादुर सिंह
पी–एच.डी. (शिक्षा), वरिष्ठ अध्यापक, शासकीय उच्च.माध्यमिक विद्यालय, अमरपुर, जिला उमरिया मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के धार्मिक कार्यों का समीक्षात्मक अध्ययन पर आधारित है। धर्मनिष्ठा माता–पिता की सन्तान और उसका संसर्ग होने से रवीन्द्र नाथ टैगोर भी धार्मिक भावना से भरे थे। परन्तु वे बुद्धिवादी थे। अतः उन्होंने कहा कि धर्म के लिये उचित एक स्थान और एक उचित वातावरण आवश्यक है जो जीवन को अनुप्रामाणित कर दे और आत्मा को ऊँचा उठा दे। उनके विचार में धर्म असीम के प्रति अधिक उत्कृष्ठ इच्छा है, असीम की आनन्दमयी अनुभूति है। इसलिये हिन्दू तथा अन्य सभी धर्मों की कटु आलोचना की है। जहाँ वे तर्कहीनता पर आधारित अंधविश्वास क्रिया–कर्म, अथवा विभिन्न प्रकार के आडम्बरों पर बल देते हैं। उन्होंने धर्म शिक्षा लेख में संकेत किया है। कि धर्म के लिये न तो मन्दिरों की न ब्राह्यश्रण और कर्म की जरूरत है। प्रकृति मानवीय भावना ही हमारे मंदिर है और स्वार्थ रहित अच्छे कार्य हमारी पूजा है, क्योंकि सच्चा धर्म तो अन्तस में होता है और वहीं बढ़ता है टैगोर ने अपने रिलीजन ऑफ मैन ने लिखा है कि सच्ची धार्मिकता तो मनुष्य को मनुष्य के रूप में सहर्श मानने के मूल्य में होती है।
गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में व्यवस्थित विचार नही दिये पर उनकी रचनाओं एवं कार्यो के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि वे पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाने के पक्षधर थें ताकि जीवन के सभी पक्षों का विकास हो सकें। वें मानवीय एवं सांस्कृतिक विषयों को महत्वूपर्ण स्थान देतें हैं। विश्व भारती में इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य, प्रकृति अध्ययन आदि की शिक्षा तो दी ही जाती हैं, साथ ही अभिनय क्षेत्रीय अध्ययन, भ्रमण, ड्राइंग, मौलिक रचना, संगीत, नृत्य आदि की भी शिक्षा दी जाती हैं।

मूल शब्द : रवीन्द्रनाथ टैगोर, धार्मिक कार्य, शैक्षिक, शिक्षण।

प्रस्तावना
अपने धर्मबोध नामक लेख में टैगोर ने धर्म शिक्षा के विषय में विचार प्रकट किये है– धर्म शिक्षा के दो पक्ष है एक चरित्र आचरण के परिष्कार जो सत्यानुभूति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। दूसरा अपनी ज्ञानेन्द्रियों का विकास एवं संस्कार जिससे अनुभवों से सुखानुभूति हो। इन दोनों को मिलाकर ही धर्म शिक्षा पूरी होती है। धर्म शिक्षा के लिये टैगोर का विचार है कि धर्म शिक्षा को सर्वाधिक रूप देना कठिन है। इस प्रकार की सर्वाधिक शिक्षा बहुत ही वैयक्तिक होती है। उनके सामने केवल सामान्य एवं अविधिक ढंग से धर्म शिक्षा थी। इसलिये शान्ति निकेतन से किसी प्रकार की साम्प्रदायिक शिक्षा अथवा मत विशेष कर्मकाण्ड नहीं होता और एक विश्वधर्म की भावना होती है। विश्व भारती में प्रातः कालीन प्रार्थना होती है, सभी धर्मों के पैगम्बरों के जन्मदिवस मनाएँ जाते है। प्राकृतिक कला में जो सौन्दर्य और आनन्द मिलता है, उससे आध्यात्मिक बोध के लिये प्रेरणा दी जाती है। आश्रम में रहकर ज्ञान एवं संस्कृति को प्राप्त करने के लिये जो गम्भीर प्रयत्न किये जाते है, उनसे कर्तव्यों की पूर्ति होती है, यह धर्म शिक्षा के अन्तर्गत है। गरीबों की सेवा अशिक्षितों को पढ़ाना गिरे हुये एवं पिछड़े लोगों को ऊपर उठाना और आगे बढ़ाना विभिन्न देश के रहने वालों मानवीय हार्दिक सम्पर्क में मेल, सहयोग से कार्य करना, देश के प्रति अच्छी धारणा, शान्ति निस्तब्धता, उच्चादर्श से पूर्ण वातावरण तथा महात्माओं की भव्यात्मा के प्रभाव की अनुभूति आदि सभी भी धर्म शिक्षा के साधन है। अतः धर्म सम्पूर्ण जीवन की साधना है, मानवता की साधना है, जिसकी शिक्षा व्यवहारिक एवं अविधिक ढंग से दी जा सकती है।

शैक्षिक विचार
गुरूदेव टैगोर के विचार से देश के समस्त अभावों का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। इसलिये उन्हें जनसाधारण की शिक्षा पर बल देना चाहिये। उनकी दृष्टि से जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिये दो कार्य करने चाहिये। एक तो बच्चों के लिये अनिवार्य प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था और दूसरा प्रशिक्षित पौदों को पढ़ाने लिखने का सामान्य ज्ञान कराना इस सन्दर्भ में उन्होंने बात को बड़ा महत्व दिया कि शिक्षा समाज के जीवन से जुड़ी होनी चाहिये। और चूँकि देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या देश में निवास करती है। इसलिये इन सबसे उनके जीवन की समस्याओं को विशेष ध्यान दिया जाए। प्रौढ़ शिक्षा के लिये उन्होंने रात्रि पाठशालाओं की आवश्कता पर बल दिया और यह का कि प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापक और माध्यममि पाठशालाओं के विद्यार्थी इनमें शिक्षण कार्य करें।
समाज में स्त्रियों की अच्छी दशा न देखकर रवीन्द्र नाथ टैगोर को लगा कि उन्हें भी उसी प्रकार ऊँचा उठाया जाये जिस प्रकार विदेशों में हुआ जहाँ शिक्षा की व्यवस्था अलग न हो सकें, वहाँ सह शिक्षा भी दी जाएँ स्त्रियों को टैगोर पिछड़ा हुआ नहीं देखना चाहते थे। वह पुरूषों की भाँति उन्हें उन्नत बनाना चाहते थे अपनी स्त्री शिक्षा में उन्होंने इन पर विस्तार में विचार प्रकट किया है, उन्होंने लिखा है कि जो कुछ जानने योग्य है, वही ज्ञान है। वह स्त्री व पुरूष दोनों के द्वारा समान रूप से जाना जाय। केवल व्यावहारिक उपयोगिकता से विचार से नहीं बल्कि जानने के लिये–1 जानने की इच्छा तो मानव प्रकृति का नियम हैं इस प्रकार सामान रूप से स्त्री को शिक्षा देने से स्त्रीत्व नष्ट नहीं होती है। यह टैगोर का विचार

था क्योंकि मानव प्रकृति इतनी आशक्त एवं परिवर्तनीय नहीं है। इसलियें उन्होंने स्त्री की शिक्षा और पुरूष की शिक्षा में कोई भेद नहीं रखा।

स्त्री को उन्होंने केवल वैयक्तिक महत्व की दृष्टि से नहीं देखा बल्कि सामाजिक दृष्टि से देखा है उन्होंने अनुभव किया कि स्त्रियों को पुरूष की आक्रमणकारी व्यायामशीलता द्वारा सजाएँ गये है कृत्रिम क्षेत्र में पीछे नहीं फेका जा सकता। स्त्रियों को छत एवं अपंग संसार में आना चाहिये। टैगोर ने लिखा है कि स्त्रियों पुरूषों से मेल करके एक नये संसार का निर्माण करें, ऐसा इतिहास में हुआ है। इस प्रकार से स्त्री पुरूष के सहयोग से जीवन की प्रत्येक विभाग में समानता के साथ मानव समाज का नव निर्माण होगा। इससे स्पष्ट है कि स्त्री शिक्षा पुरूष से हो और उसका लक्ष्य समाज का नव निर्माण हो। इसी विचार को टैगोर ने विश्व भारती में साकार रूप प्रदान किया हैं।

शान्ति निकेतन में स्त्री शिक्षा विभाग में शिक्षण 1908 में आरम्भ हुआ लेकिन बाधाओं के उपस्थित होने से उसे कुछ समय के लिये बन्द कर दिया गया। पुनः 1922 में नारी भवन के नाम से आरम्भ किया गया, बाद में इसे नारी विभाग कहा गया। यहाँ पर बालिकाओं और स्त्रियों को पुरूषों के समान और साथ ही शास्त्रीय विषयों की शिक्षा मिलती है। तथा गृह विज्ञान, पाक कला, सिलाई–कढ़ाई कला कौशल के लिये भी विशेष प्रबन्ध है। जो अध्ययन स्त्रियों द्वारा होता है, उसका मानदण्ड भी ऊँचा है। इसका प्रभाव शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक समुन्नति में प्रकट होता है, जिसके लिये वहाँ उसी गोष्ठिया, समितियाँ और संगठन है। खेल–कूद, व्यायाम, आत्मरक्षा की शिक्षा, समाज सेवा इत्यादि कार्यों की उपयुक्त सुविधाएँ है। इस प्रकार टैगोर ने स्त्री वर्ग के शरीरिक बौद्धिक व्यावसायिक सांस्कृतिक और सामाजिक उन्नति एवं शिक्षा के लिये प्रयत्न किया और जोर दिया, जिससे व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सके और उनका सुन्दर जीवन और सफल बन सकें।

टैगोर की साहित्यिक रचनाओं से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होते हुये भी वे अपने राष्ट्र के प्रति गहरी भावना रखते थे, और सक्रिय रूप से राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेते थे। प्राचीन भारतीय संस्कृति की परम्पराओं से प्रभावित होकर टैगोर ने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर अत्यधिक जोर दिया, क्योंकि टैगोर की राष्ट्रीय भावना उनके कवि हृदय में प्रसूत हुई थी। वास्तव में टैगोर की राष्ट्रीय शिक्षा, अन्तराष्ट्रीय शिक्षा के प्रतिकूल न थी, बल्कि उसमें अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की छाप परिलक्षित होती है। उनका विचार था कि भारत के प्रत्येक बालक एवं नागरिक में राष्ट्रीय शिक्षा में राष्ट्रीय भावना का विकास करना चाहिये।

विश्व भारती में प्राच्य संस्कृतियों के अध्ययन पर विषेश जोर दिया गया। चीन की शिक्षा का अलग पाठ्यक्रम है। विभिन्न भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जी शिक्षा को पुस्तक केन्द्रित बनाने के विरोधी थे। वे अनुभव केन्द्रित एवं क्रिया प्रधान शिक्षा पर बल देते थें। छोटे बच्चों पर पाठ्य पुस्तकों के बोझ को वे डालना नही चाहतें थें। उनके अनुसार प्रकृति से बच्चा जीवन का सही शिक्षा प्राप्त कर सकता हैं उच्च कक्षाओं में पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग किया जा सकता हैं।

विश्व भारती की शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित नहीं हैं। विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ वहाँ देखने को मिलेगी। ड्राइंग, प्रयोगशाला कार्य, प्रातःकालीन प्रार्थना सरस्वती यात्राएँ, छात्रों का स्वशासन, खेलकूद, समाज सेवा, आदि क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अंग की भाँति ही हैं। इसलिए विश्व भारती के पाठ्यक्रम को अनुभव केन्द्रित माना जाता हैं। गुरूदेव जी का पाठ्यक्रम विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा शरीर मन तथा हृदय में सौन्दर्यानुभूति की शक्ति विकसित होतीं हैं। वे वर्तमान पाठ्यक्रम से संतुष्ट नही थें। क्योंकि वह परीक्षा लक्ष्य करके बनाया जाता हैं। टैगोर ने पाठ्यक्रम निर्माण में प्रकृति शिक्षा तथा मानव संतुलन पर बल दिया हैं बचपन के प्रथम सात वर्ष प्रकृति की गोद में बिताना चाहिए ताकि प्रकृति अपने अनुरूप बालक को शिक्षित कर सकें। यद्यपि कि वे महान रचयिता और पुस्तक प्रेमी थे फिर भी उन्होने पुस्तकीय पाठ्यक्रम को महत्व नहीं दिया। उनके अनुसार पाठ्यक्रम जीवन की आवश्यकताओं से संबंधित होना चाहिए, वे प्रकृतिवादी होतें हुए भी व्यक्ति को समाज से जोड़ना चाहतें थें।

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी का दृष्टिकोण पाठ्यक्रम की दृष्टि से बड़ा व्यवहारिक था। उनके अनुसार पाठ्यक्रम को एक सीमित क्षेत्रों में बाधना कठिन हैं। उनका मत था कि पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के विषयों का समावेश हो जिससे प्रत्येक देश दूसरे देश की संस्कृति तथा सभ्यता को पहचान सकें तथा 'विश्व बन्धुत्व' के गुण विकसित हो सकें। 'विश्व भारती' की स्थापना इन्ही भावनाओं से प्रेरित होकर हुई जहाँ भाषा एवं साहित्य, इतिहास एवं भूगोल, कला एवं संस्कृत के अतिरिक्त वे क्रियाएँ भी सम्मिलित थी जो विदेशियों से सम्पर्क तथा सहानुभूति की वृद्धि में सहायक हो सकें। गुरूदेव के अनुसार बालक को अपने देश की आवश्यकताओं एवं समस्याओं के विषय में भी जानना आवश्यक हैं। बालक को भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विषयों की जानकारी होनी चाहिए। गुरूदेव के पाठ्यक्रम को निम्न भागो में बांट सकतें हैं–

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने इस संबंध में स्पष्ट अभिव्यक्ति की थीं कि ज्ञान किसी देश के व्यक्तियों के लिए ही नही अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है यही कारण हैं कि विश्व भारती विश्वविद्यालय में देश–विदेश की भाषाओं, संस्कृतियों, ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था हैं। विदेशी छात्रों के लिए कुछ विशेष पाठ्यक्रम (भारतीय संगीत) भी चलायें जातें हैं। एक बात यहाँ की पाठ्यचर्चा में विशेष हैं ओर वह यह हैं कि यह आज भी कला, संस्कृति, धर्म और ग्रामोत्थान केन्द्रित हैं।

शिक्षण विधियाँ

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने मनुश्य को भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों का योग मानते थें और यह मानते थें कि मनुष्य का विकास उसकी इन दोनों शक्तियों पर र्निभर करता हैं। इन्होनें शिक्षण की किसी विधि का निर्माण तो नहीं किया परन्तु अपने समय की शिक्षण विधियों में सुधार के लिए सुझाव अवश्य दियें हैं। इन्होनें अपने समय की पुस्तकीय एवं कथन विधियों का कड़ा विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि बच्चों को जो कुछ भी सिखाया जाय उन्हे जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में रखकर स्वयं करकें, स्वयं के अनुभवों द्वारा सिखाया जाय। ''इन्होनें अपने समय की अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा का कड़ा विरोध किया और मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा किये जाने पर बल दिया''[1] गुरूदेव जी ने स्वयं के अनुभवों एवं स्वयं के निर्णयों द्वारा सिखाया जाय। इस संदर्भ में उन्होनें कुछ विधियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की बात कहीं हैं जैसे–

1. शिक्षण विधि वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए। वह लिखते है कि वास्तविक वस्तुओं के सम्पर्क में आने से उनकी निरीक्षण तथा तर्क शक्ति का विकास होता है।
2. शिक्षण विधि बालक की स्वाभाविक रूचियों और आवेगों पर आधारित होना चाहिए।
3. शिक्षण के लिए केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नही रहना चाहिए वरन् प्रश्नोत्तर एवं वाद विवाद विधि का भी प्रयोग करना

चाहिए।
4. शिक्षण विधि में नृत्य, अभिनय, दस्तकारी आदि को स्थान देकर शारीरिक क्रिया को महत्व देना और इस प्रकार क्रिया विधि का प्रयोग करना चाहिए।
5. शिक्षण विधि में बालक के अनुभवों और इन्द्रियों को प्रयोग में लाना चाहिए।

शिक्षण का सर्वोत्तम विधि बताते हुए टैगोर ने लिखा है कि – ''भ्रमण के समय पढ़ाना, शिक्षण की सर्वोत्तम विधि हैं। ''रबीन्द्रनाथ टैगोर जी बालक की असीम शक्ति एवं जिज्ञासा के प्रति आस्था प्रकट करतें हैं। वे बालक की अनन्यता में विश्वास करते हैं और कहते हैं कि प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। ''ये बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देने का समर्थन करते हैं। उनका विचार हैं कि बालकों में विशेष प्रकार की आदतें डालकर उन आदतों का दास उन्हें न बनाया जाय।''[2] शिक्षण जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के द्वारा दिया जाना चाहिए। जहॉ तक सम्भव हो, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि का शिक्षण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। भ्रमण, दृश्य दर्शन आदि प्रविधियों के द्वारा शिक्षा में यथार्थ दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता हैं। शिक्षण विधि का अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त क्रिया सिद्धान्त हैं। टैगोर जी शरीर और मस्तिष्क की शिक्षा के लिए क्रिया को आवश्यक मानते थें। उनके अनुसार बालक को किसी हस्तकला में अवश्य प्रशिक्षित किया जायें। वे पेड़ पर चढ़ने, कूदने, बिल्ली या कुत्ते के पीछे दौड़ने, फल तोड़ने, चिल्लानें, ताली बजाने, अभिनय करके शिक्षण की आवश्यक प्रविधि के रूप में स्वीकार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने शिक्षण विधियों के निम्न स्वरूपों के प्रयोग पर बल दिया।

मौखिक विधि : प्राचीन काल में गुरू जी अपने शिष्यों को उपदेश, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, वाद विवाद और तर्क आदि मौखिक विधियों द्वारा ही पढ़ाते थे। गुरूदेव ने इन विधियों के महत्व को स्वीकार किया परन्तु इस सावधानी के साथ कि इन विधियों का प्रयोग तभी किया जाय जब बच्चों के जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में स्वयं करके, स्वयं के अनुभवों से सीखना सम्भव न हो। इस संदर्भ में गुरूदेव ने दूसरी बात यह कही कि किसी भी मौखिक विधि का प्रयोग करते समय बच्चों को सोचने और अपनी शंकाओं के समाधान के स्वतंत्र अवसर दिया जाय तथा उन्हें हमेशा क्रियाशील रखा जाय।

स्वाध्याय विधि : यह सीखने–सिखाने की अति प्राचीन विधि है। गुरूदेव जी ने स्वयं इस विधि द्वारा अधिक सीखा समझा था। इन्होनें अपने पिता और बड़े भ्राता के मार्गदर्शन में वेद और उपनिशदों का अध्ययन किया था। इस विधि के प्रयोग के संदर्भ में गुरूदेव ने तीन सुझाव दियें–
1. प्रथम यह हैं कि सर्वप्रथम बच्चों को स्वाध्याय के योग्य बनाया जाय, उन्हे भाषा का स्पष्ट ज्ञान कराया जाय और उनमें स्वयं पढ़कर समझने की मानसिक योग्यता विकसित की जाय।
2. दूसरा बच्चों को उचित स्वाध्याय हेतु निर्देश दिये जाय।
3. तीसरा बच्चों को स्वाध्याय के बाद उनसे विचार–विमर्श हो, उनकी शंकाओं का समाधान हो।

विश्लेषण एवं संश्लेषण विधि : गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु इस विधि को अधिक उपयोगी मानते थें, परन्तु इसके प्रयोग में दो सावधानियाँ बरतने पर बल देते थें। पहली यह कि बच्चों के सामने जो भी उदाहरण प्रस्तुत किए गये वे उनके जीवन से सम्बन्धित हो और दूसरी यह कि सामान्यीकरण एवं निर्णय में बच्चें की भागीदारी होनीं चाहिए।

क्रिया विधि : गुरूदेव जी ने सबसे अधिक इस बात बल दिया कि बच्चों को स्वयं करके, स्वयं के अनुभव से सीखनें के अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, स्वयं करके स्वयं के सीखने की विधि को क्रिया विधि पर कहतें हैं। इस विधि के प्रयोग में कुछ सावधानियाँ रखनी पड़ती है। प्रथम यह कि क्रिया बच्चों के अपने जीवन के सम्बन्धित होना चाहिए, दूसरी यह कि बच्चों की उस क्रिया मे रूचि होनी चाहिए, तीसरी यह कि क्रिया को अपने ढ़ंग से सम्पादित करने की बच्चों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। चौथी यह कि बालकों द्वारा सम्पादित क्रिया में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। ये प्रकृति निरीक्षण, भ्रमण और खेल विधि को क्रिया विधि के रूप में प्रयोग करते थे।

प्रयोग विधि : गुरूदेव जी कला कौशल, विज्ञान और अन्य व्यवहारिक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा के लिए प्रयोग विधि का समर्थन एवं प्रयोग किया। इस विधि के तीन पद होते हैं।

पहला पद–	शिक्षक द्वारा प्रदर्शन
दूसरा पद–	छात्रों द्वारा अनुकरण
तीसरा पद–	छात्रों द्वारा अभ्यास

इस प्रकार यह विधि प्रदर्शन अनुकरण और अभ्यास इन तीनों विधियों का योग होता है। गुरूदेव जी ने स्पष्ट किया कि इस विधि के प्रयोग में भी शिक्षार्थियों की शंकाओं का समाधान होना आवश्यक हैं। उन्हे कैसे एवं क्यों का भी उत्तर देना चाहिए। ''हमारा आनन्द रहित रूखी, फीकी तथा निर्माण शिक्षा के कारण जीवन की वह बड़ी शक्ति व्यर्थ चली जाती है। हम कुछ रटी बातों का बोझा खीचतें हुए शिशुकाल से बालपन और बालपन से यौवनवस्था में प्रवेश करते है। रटते–रटते हमारी कमर झुक जाती हैं परन्तु इस पर भी हमारा मनुष्यत्व भली–भाँति फलता–फूलता नहीं हैं।''[3]

भ्रमण द्वारा सीखना : गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने भ्रमण द्वारा सीखने पर बल दिया उनका कहना था कि वस्तुओं के सीधे सम्पर्क से ज्ञान प्राप्त करना सरल होता है यह स्वाभाविक नहीं है कि मस्तिष्क शरीर के किसी और अंग का प्रयोग करे, शिक्षा में प्रयुक्त जीवन के सम्पूर्ण अंग एवं क्रिया–कलापों का योग होना आवश्यक हैं। इस विधि से सीखने में गति, प्रेरणा तथा रूचि उत्पन्न होती हैं तथा इस प्रकार से सीखना स्थायी होता है। उन्ही के शब्दों में

''भ्रमण के समय पढ़ाना, शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है।''[4] कक्षा में पढ़ाना गतिहीन र्निजीव नीरस होता है जिसमें छात्र रूचि नही लेता है प्रकृति स्वयं शिक्षा देती है। प्रकृति की गोद में शारीरिक, मानसिक, भावात्मक तथा सौन्दर्यानुभूति की शक्ति का विकास होता है। इसलिए प्रकृति निरीक्षण एवं भ्रमण बालक के विकास के लिए आवश्यक है।

गेस्टाल्ट विधि या पूर्ण विधि : रबीन्द्रनाथ टैगोर जी की गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की तरह सीखने की पूर्ण विधि में पूर्ण विश्वास करते थे वे कहते है "वाल्यावस्था में हम अपने पाठों को पूरे शरीर और मस्तिष्क की सहायता से सीखते है। हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ पूरी तरह से सक्रिय और समर्थ रहती है। जब हम स्कूल भेजे जाते है

तो प्राकृतिक सूचनाओं का द्वार बन्द हो जाता था। हमारी आँख अक्षरों को देखती है, कानो को पाठो की सूची सुनायी पड़तीं हैं।'' गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी यह नही स्वीकार करते कि बालक खण्डित या आंशिक विधि से सीखता हैं, यह विधि से सीखता है, वह विधि उसकी प्रकृति के विपरीत हैं। उन्होने पूर्णरूप से सीखने पर ही बल दिया है। उन्ही के शब्दों में ''हमारी आँख स्वाभाविक रूप से.सीखने पर बल देती है।

शिक्षा का माध्यम

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने शिक्षा का माध्यम विद्यार्थियों की भॉति भाषा में होना चाहिए विदेशी भाषा अंग्रेजी से भारतीय विद्यार्थियों का सही प्रकार का विकास नही हो सकता हैं। हमारी मातृभाषा का साहित्य ही परस्पर समानता को स्थापित कर सकते है। इस बात को देश का दुर्भाग्य न कहा जायें और क्या कहा जा सकता है कि लोग अपनी मातृभाशा में कभी पत्र तक नही लिखतें। गुरूदेव रवीन्दनाथ टैगोर ने शिक्षा के तीन महत्वपूर्ण माध्यम बताए हैं–

1. मातृभाशा : शिक्षा का माध्यम
2. सृजन : शिक्षा का श्रेष्ठ माध्यम
3. प्रकृति : शिक्षा का प्रभावशाली माध्यम

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा : गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने प्रारम्भ से ही यह महसूस किया है कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों और जन सामान्यों के बीच की खाई गहरी कर दी हैं। साथ ही वे अंग्रेजों द्वारा भारत की परम्परागत शिक्षा को समाप्त करने की दुखद प्रक्रिया से परिचित थें उनका मानना था कि जब भारतीय मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते थें तो उनका मस्तिष्क चैतन्य एवं क्रियाशील रहता था। अतः उन्होने मातृभाषा के बजाय माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग की आलोचना की। कवि एवं अध्यापक गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी भाव विह्वल होकर मातृभाषा का समर्थन करते है वे लिखते है कि ''शिक्षाय मातृभाषा मातृ दुग्ध!''[5] शिक्षा में मातृभाषा माता के दुग्ध के समान है। वे तो शिक्षा के उच्चतम चरण तक मातृभाषा के माध्यम से ही अंग्रेजी पढ़ाना चाहते थें। इसके लिए उन्होनें एक प्राइमर ''इग्राजी सोपान'' लिखा। उनमें विचार में ''औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली गहन अंधेरे में से गुजरती ट्रेन के प्रकाशित डिब्बे के समान थीं। कुछ विशेष लोग ही पढ़ पा रहे थे। और भारी संख्या में जनता पीछे छुटती जा रही थी।''[6] उनकी दृष्टि में जब तक मातृभाषा माध्यम न बने तब तक शिक्षा का प्रसार नहीं हो सकता। गुरूदेव मानते थे कि सफल आत्म प्रकाशन केवल अपनी भाषा के माध्यम से ही हो सकती है। यह समाज के विकास एवं सुप्रबन्ध के लिए आवश्यक है।

गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार भारत के मातृभाषा को अपने पुनर्जागरण का प्रतीक बनाना चाहिए। मातृभाषा को उसका उचित स्थान देना, गुरूदेव की दृष्टि में अपने आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास को पुनर्स्थापित करना है।

सृजन, शिक्षा का श्रेष्ठ माध्यम : मानव के जीवन में पूर्णता हेतु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा में रचनात्मक कार्यो पर अत्यधिक जोर दिया। व्यक्ति एवं प्रकृति के मध्य की एकता को सुदृढ़ करने के अतिरिक्त कला, संगीत, एवं साहित्य मानव की असामाजिक व विध्वंसात्मक प्रकृतियों को उचित दिशा प्रदान करतीं हैं। कला व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का विकास कर उसे पूर्ति एवं परितोश का भाव प्रदान करता है। व्यक्तित्व के विकास में लय एवं लालित्य का गुरूदेव ने बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान माना। कला व्यक्ति को प्रकृति के समीप ले जाकर उसमें सौन्दर्यानुभूति बढ़ाती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जी शरीर, मस्तिष्क तथा हाथ का सम्बन्धित विकास चाहते थे इसके लिए उन्होनें कला को शिक्षा का प्रभावशाली माध्यम माना। शिक्षा का एक उद्देश्य आत्मप्रकाशन हैं आत्मप्रकाशन हेतु शब्दों के अतिरिक्त रेखाओं एवं रंगो, ध्वनि एवं लय की भाषा को भी जानना जरूरी है। गुरूदेव ने कला का फाईन आर्ट्स (ललित कला) एवं अप्लायड आर्ट्स (प्रयुक्त कला) में विभाजन को गलत माना। वे बौद्धिक पक्ष में अधिक महत्व देने तथा संवेगात्मक पक्ष की उपेक्षा के विरोधी थें। वे सृजनशील कलाकार को दार्शनिक की तुलना में कम महत्वपूर्ण माने जाने के विरोधी थें।

प्रकृति शिक्षा का प्रभावीशाली माध्यम

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी के मन में प्रकृति के प्रति अगाध श्रद्धा थीं। यह श्रद्धा उनके कवि या कलाकार होनें के नाते कम और एक संवेदनशील मानव होने के नाते अधिक थी। मानव के पास इस बात का विकल्प रहता है कि वह पृथ्वी पर रचनात्मक जीवन जिये या विध्वंसात्मक। वह एक बेहतर जीवन शैली का विकास कर सकता है। जिसमें प्रकृति आती हैं और अन्य सभी जीवों के साथ सम्बन्ध एवं सहानुभूति का व्यवहार करते हुए जीवन के श्रेष्ठ लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता हैं। पर अगर वह अपने को प्रकृति का स्वामी मानता हैं और उसका शोषण करता हैं तो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए विनाश का कारण बन सकता हैं। अतः वे चाहते थे कि मानव प्रकृति के सौन्दर्य एवं दयालुता के प्रति चैतन्य रहें। इस कार्य के लिए प्रकृति के प्रति प्रेम और सम्मान शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। शान्ति निकेतन की स्थानीय नदी कोपाई लाल बालू से ढ़की समतल भूमि तथा विस्तृत क्षितिज बालकों के लिए आकर्षण का केन्द्र था। बालको वृक्षों, पशुओं, झाड़ियों के मध्य दौड़ना खेलना कूदना चाहता हैं। शहर के विद्यालयों की चहरदीवारी के अन्दर उसे कैद रखा वस्तुतः उसे अशिक्षित बनायें रखना हैं। ऐसी शिक्षा गुरूदेव की दृष्टि में आत्मा या जीवनरहित होती हैं।

विद्यालय में अनुशासन, शिक्षक एवं विद्यार्थी

बालकों के स्वतन्त्र विकास पर टैगोर जी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहतें थें। इसी लिए वह बाहर से कोई अनुशासन नहीं थोपना चाहतें थें, बल्कि आन्तरिक भावना के रूप में अनुशासन को स्वीकार करते थें। टैगोर जी अनुशासन को नैतिक मूल मानते थे। गुरूदेव आत्मानुशासन या स्वानुशासन या वास्तविक अनुशासन सभी को मानते थे जो आन्तरिक भावनाओं के विकास के लिए आवश्यक हैं। वह आत्मानुशासन के लिए नियन्त्रण को किसी तरह सीमित नहीं करना चाहतें थें, क्योंकि वे आन्तरिक भावना के विकास के लिए दण्ड देने के विरोधी थें और स्वतंत्रता के पक्ष में थें। टैगोर ने अनुशासन का अर्थ बताते हुए लिखा है कि – ''वास्तविक अनुशासन का अर्थ परिपक्व एवं स्वाभाविक आवेगों की समुचित उत्तेजना और अनुचित दिशाओं में विकास से सुरक्षा करना है।''[7]

''अनुशासन ऊपर से थोपा न जायें। वह आन्तरिक होना चाहिए स्वशासन होना चाहिए बालकों को न तो पुरस्कार से ललचाकर और न ही दण्ड से भयभीत करके अनुशासन रखने का प्रयास करना उचित हैं। शिक्षा प्राप्त करते समय विद्यार्थियों को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।''[8]

गुरूदेव जी का मानना था कि यदि विद्यालयों में शिक्षक ज्ञानी एवं चरित्रवान है और बच्चों के साथ प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करतें हैं तो बच्चे स्वयं अनुशासन पालन करेगें। स्वानुशासन के

विकास के लिए यह भी आवश्यक समझते थे कि विद्यालयों में खेल–कूद तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हो। इनका अनुभव था कि उच्च सामाजिक पर्यावरण में ही मनुष्य को साधना के लिए अवसर मिलते है और वह अनुशासित रहते है और यदि कोई भूल होती है तो वे स्वयं उसे दूर करते है इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती का सम्पूर्ण परिवेश संस्कार प्रधान है शिक्षक और छात्र सादा जीवन जीते है सभी पूर्णरूप से अनुशासित रहते है। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी का मानना था कि स्वतन्त्रता और विश्वास के वातावरण में अनुशासनहीनता उत्पन्न नहीं हो सकतीं हैं। शिक्षा में अनुशासनहीनता वही उत्पन्न होतीं हैं जहाँ लोग बालकों को समझने में भूल करते है, तथा भाँति–भाँति के बन्धन उन पर लादतें है। बालक में नैसर्गिक शक्तियों को दबाने से अगणित दुर्गण पैदा होते है। अतः बाह्य अनुशासन बालक के विकास के लिए उचित नही है उन्ही के शब्दों में – ''कारागार अथवा सेना के अनुशासन का शैक्षिक संस्थाओं में स्थान नही है।''[8]

टैगोर जी ने अनुशासन का अर्थ बताते हुए लिखा है – ''वास्तविक अनुशासन का अर्थ अपरिपक्व एवं स्वाभाविक आवेगों की समुचित उत्तेजना और अनुचित दिशा में विकास से सुरक्षा, स्वाभाविक अनुशासन की स्थिति में रहना छोटे बच्चों के लिए सुखदायक है। यह उनके पूर्व विकास से सहायक होता हैं।

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी प्रकृतिवादी थे यद्यपि कि वे रूसों की तरह प्राकृतिक एवं स्वाभाविक अनुशासन पर बल देते थे। लेकिन जहाँ रूसों प्रकृति को दण्ड देने का अधिकार भी है वही टैगोर ऐसा ही करते, क्योंकि प्रकृति में विवेक शक्ति नहीं होती है। टैगोर के विचारों से अनुशासन बनाये रखने के लिए विद्यालय का स्वस्थ्य एवं स्वच्छ होना आवश्यक है। उनके अनुसार – ''वातावरण के लिए यह आवश्यक है कि अधिनायक वादी अधिकारियों द्वारा छात्रों पर बन्धन न लादे जायें। उन्हें पूर्णरूपेण क्रिया करने के लिए स्वतन्त्र कर दिया जाय। स्कूल के प्रशासन में अपना स्थान रखते है और दण्ड के विषय में हम उनके अपने न्यायालय एवं स्वयं के उनके न्याय पर बहुत अधिक विश्वास करते है। बालक स्वतन्त्रता के रास्ते पर ही उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकता हैं। उनके शिक्षा का उद्देश्य बालक को आनन्द प्रदान करना और अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करना है।

उन्होनें स्कूल में बालकों से किस प्रकार व्यवहार किया जाय इसके विषय में बड़ा ही व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है उन्ही के शब्दों में – ''मै उनसे नही कहता कि तुम ऐसा मत करो या वैसा मत करा, मै उन्हे पेड़ पर चढ़ने से भी नही मना करता, जहॉ वे जाना चाहे मै उन्हे कभी नही रोकता। सबसे पहले उनमें विश्वास उत्पन्न करना और सदा मेरे विश्वास पर वे प्रतिक्रिया करते अभिभावक समस्यात्मक बालक को मेरे पास भेजते थें जिससे वे निराश हो चुके होते थे जब बालक को यहाँ स्वतन्त्रता और विश्वास का वातावरण दिया जाता तो वे समस्या नही बनते थे, मैने उन्हे कभी स्वयं दण्ड नही दिया।'' टैगोर जी ने शारीरिक दण्ड को बालक के विकास के मार्ग में बाधक माना हैं।

शिक्षक

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी अध्यापक के रूप में ऐसे व्यक्ति की कल्पना करते है जो छात्रों को उपदेश देने की जगह अपने व्यवहार एवं कार्य से उसे सद्मार्ग पर ले जायें। अध्यापक का अपना जीवन तथा सत्य के खोज की लगन इस तरह होनी चाहिए कि छात्र सत्य एवं प्रकृति को सम्मान देने की भावना को आत्मसात करलें। यह तभी सम्भव है जब गुरू एवं शिष्य एक दूसरे के साथ रहें। उनके अनुसार अध्यापक का छात्र से सम्बन्ध केवल ज्ञान देने का नहीं हैं वरन् जीवन के सत्य को साथ–साथ अनुभव करने का हैं। गुरू एवं शिष्य का व्यक्तिगत घनिष्ठ सम्बन्ध शिक्षा देने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। टैगोर जी यह मानते थें कि वही व्यक्ति बच्चों को सही ढंग से शिक्षा दे सकता है जिसमें बालक की निःछलता बनी रहतीं हैं। वे लिखते हैं कि ''जिस अध्यापक के अन्दर का बाल्यपन मर गया वह बच्चों की जिम्मेदारी लेने का अधिकारी नहीं है। अध्यापक के अन्दर स्थायी बालक बच्चों की एक आवाज पर बाहर आ जाता है इसकी एक ही आवाज में एक मृदुल जीवित मुस्कुराहट आ जाती है। अगर बच्चा उसे अपनी ही तरह का एक सदस्य न मानकर प्रागैतिहासिक काल का अपरिचित विशाल जानवर मानता हो तो वह अपने कोमल हाथों को बिना भय के उसकी ओर नही बढ़ा पायेगा।''[9]

बच्चे सबसे अच्छी शिक्षा प्यार, विश्वास एवं प्रसन्नता के माहौल में ही प्राप्त कर सकते है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जी इस बात को बर्दाश्त कर सकते थे कि ऊँची कक्षाओं में अच्छे अध्यापक न हो पर वे छोटे बच्चों के लिए सर्वाधिक अनुभवी एवं संवेदनशील अध्यापकों को ही रखते थे। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी अध्यापकों को एक ही मन्त्र दिया करते थे ''कृपया सिद्धान्तों की शिक्षा बच्चों को न दे इसके बजाए अपने को पूर्णतः उनके अनुराग में समर्पित कर दें।''

टैगोर जी ने अपनी शिक्षा योजना में शिक्षक को अति महत्वपूर्ण स्थान दिया है और उसे शिक्षा का मुख्य आधार माना है। इन्होने शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए लिखा है कि – ''शिक्षा केवल शिक्षक के ही द्वारा और शिक्षण विधि के द्वारा कदापि नही दी जा सकतीं है मनुष्य केवल मनुष्य से ही सीख सकता है।'' अतः शिक्षक को पूर्वाग्रही संकीर्ण, असाहिष्णु, अधीर और अंहकारी नही होना चाहिए। इसी प्रकार टैगोर जी ने शिक्षक को शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख आधार माना है। इस रूप में उन्होने शिक्षक कुछ कार्य निर्धारित किये है जो निम्नलिखित है–

1. शिक्षक और बालक का समान रूप से सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुश्रवण और सत्ता की खोज करनी चाहिए।
2. शिक्षक को बालक की रचनात्मक शक्ति को उत्तेजित करना चाहिए, जिसमें वह रचनात्मक कार्यो में लगा रहें। शिक्षक को ऐसे वातावरण निर्माण करना चाहिए जिसमें बालक स्वानुभाव द्वारा अधिक सरलता और दक्षता, से सीख सकें।
3. शिक्षक बालक को प्रेरणादायी और शिक्षाप्रद अनुभव प्रदान करने वाला होना चाहिए।
4. शिक्षक, शिक्षक ही नहीं अपितु गुरू होना चाहिए, शिक्षक का आचरण आदर्श, समाजवादी और सहृदय होना चाहिए। गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी ने कहा हैं कि– ''एक शिक्षक तब तक अपने विद्यार्थियों को भली–भॉति शिक्षित नही कर सकता जब तक कि वह स्वयं अध्ययनशील न हो, जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्जवलित नही कर सकता जब तक की स्वयं अपनी लौ को प्रज्जवलित नही करता रहे।''[10]

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने अपनी पुस्तक 'द पैरट ट्रेनिंग' नामक लघु कथा में व्यंगन किया है कि आज की शिक्षा संस्था में हम शिक्षक बालक को पिजरे का तोता बना देते है और उसके व्यक्तित्व को घोट देते है, उसे मार डालते है।

''गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी ने कहा है कि शिक्षक को ज्ञानी, बृहम्चारी, चरित्रवान और आदर्श आचरण करने वाला होना चाहिए। ये शिक्षक से यह भी आशा करते थे कि वह अपने विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नता को समझकर उनके लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करे, उनके साथ सदैव प्रेम और सहानुभूति व्यवहार करें।''[11]

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी के अनुसार

शिक्षक में विनयशीलता, सहनशीलता तथा धैर्यशीलता के गुण होने चाहिए। उन्होने कठोर शिक्षकों को जेलवार्डन, ड्रिल सार्जेन्ट, जन्मजात अत्याचारी, शक्ति का भोगी आदि की संज्ञा दी। शिक्षक को बालमनोविज्ञान का ज्ञान होना भी होना जरूरी है शिक्षक को शैक्षणिक प्रक्रिया में मूल श्रोता नही वरन् सृजनात्मक की प्रेरणा देने वाला, छात्रों का मित्र, पथ प्रदर्शक तथा सहायक होता है। वे अध्यापक को समाज का आदर्श मानते थे तथा समस्त सदगुणों को उसमें देखना चाहते थे जिससे विद्यार्थी उनका अनुकरण कर सकें। उनके अनुसार अध्यापक का जीवन सादा एवं विचार उच्च हो उसमें भौतिकता के प्रति आकर्षक नहीं होना चाहिए।

विद्यार्थी

गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर जी विद्यार्थी के प्रति दृष्टिकोण व्यवहारिक था महात्मा गॉधी की तरह वे भी छात्रों की सादगी पर अत्यधिक बल देते थे। धनी परवार में जन्म लेने के कारण वे विलासितापूर्ण जीवन की बुराई से अच्छी तरह परिचित थे। इसी अनुभव को लेकर अपने लड़के को उन्होने सादगी के रास्ते पर चलने की सलाह दी। सादगी को वे पूर्ण शिक्षा की अभिव्यक्ति मानते थे। ''टैगोर जी का विद्यार्थी प्राचीन वैदिक आश्रम के विद्यार्थी की तरह समस्त गुणों से युक्त है– यथा, ब्रम्हचर्य, विनम्र, सादगी, स्वच्छता प्रिय, अनुशासन,मातृभाषा, उच्च अभिलाषा, सौन्दर्य प्रेमी, वैज्ञानिक दृष्टिकोण इत्यादि।''[12] 1

छात्र को न केवल पुस्तकीय ज्ञान से बल्कि उसे समस्त बाह्य ज्ञान रखना चाहिए उसे समाज देश तथा विश्व की सेवा के लिए सदैव तत्पर और सचेष्ठ रहना चाहिए। विद्यार्थी में सभी संस्कृतियों एवं धर्मो को आत्मसात करने की योग्यता हो। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर जी शिशु को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठकृति मानते है। उनके हृदय में बालक के प्रति अनन्त प्रेम, प्रगाढ़ सहानुभूति तथा निश्छल करूणा सदैव प्रवाहित होती है। घर में बालक पर रखी जाने वाली कृत्रिम नियन्त्ररण तथा विद्यालय के कठोर अनुशासन से उसकी आत्मा कराह उठती है। सामाजिक कृत्रिमता बालक के प्रकृति गुणों को दबा देते है। टैगोर जी की दृष्टि में बालक की सच्ची शिक्षा उसके प्रकृति गुणों की उसके विकास में निहित है। बाल्यकाल में विद्यार्थी को प्राकृतिक जीवन के समीप रहने का अवसर मिलना चाहिए। इससे उसका शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं बौद्धिक विकास समन्वित और स्वस्थ्य ढंग से हो पाता है। प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए उसके साथ समरस होना पड़ता है। कवि की दृष्टि में ''चारों ओर फैली हुई प्रकृति हमारी महान शिक्षिका है। वह हमारे जीवन को सौन्दर्य और आनन्द समरसता और मधुर भावनाओं के साँचे में ढांलती है, इसके साथ ही हमें अपनी अन्तरात्म का और मधुर भावनाओं के सॉचे में ढॉलती है, इसके साथ ही हमें अपनी अन्तरआत्मा के प्रति मनन करने की प्रेरणा देती है।''

शान्ति निकेतन में गुरूदेव जी ने प्रकृति के माध्यम से बच्चों को शिक्षा देने का प्रयोग किया। स्वयं उन्ही के शब्दों में ''मेरे विद्यालय में विद्यार्थियों ने वृक्ष के रूप से विज्ञान का ज्ञान सहज रूचि से अर्जित किया है। नाम मात्र के स्पर्श से वे पता लगा सकते है कि प्रत्यक्ष रूप में आतिथ्य प्रकट करने वाले तने पर वे कहाँ पैर जमा सकते है मेरे बच्चे फल एकत्रित करने, विश्राम लेने तथा अवांछनीय तत्वों से स्वयं को छिपाने आदि के लिए वृक्षों का सर्व श्रेष्ठ सम्भव उपयोग करने में समर्थ है।''

गुरूदेव शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का आदर करते थे और उनके लिए उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था पर बल देते थे। परन्तु दूसरी और उनसे ब्रम्हचर्य व्रत पालन करने की अपेक्षा करते थे। ब्रम्हचर्य ब्रत में इन्द्रिय निग्रह मन, वचन व कर्म की शुद्धि तथा सादा एवं प्राकृतिक जीवन का विशेष महत्व है। गुरूदेव के अनुसार विद्यार्थियों को नित्य प्रातः काल उठना चाहिए, व्यवहार में विनम्र होना चाहिए। प्रकृति एवं सौन्दर्य का उपासक होना चाहिए और सांसारिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्ति का इच्छुक होना चाहिए जब त कवे स्वयं से प्रेरित होकर और गुरू में श्रद्धा रखकर सीखने के लिए आगे नही बढेगें तब तक वे कुछ नही सीख सकेगें। इसके साथ–साथ उन्हें असभ्य दोषपूर्ण और निन्दनीय आचार विचार से दूर रहना चाहिए।

संदर्भ

1. रमन बिहारी लाल : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार पृष्ठ 271
2. डॉ0 रामशकल पाण्डेय : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री पृष्ठभूमि पृष्ठ सं. 235
3. डॉ0 सत्य पाल रूहेला : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पृष्ठ 234 अग्रपाल पब्लिकेशन आगरा–2
4. डॉ. ओ.पी. सिंह – शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 196 शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
5. गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर : 'शिक्षा' पृष्ठ 236
6. गुरूदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर : 'शिक्षा' पृष्ठ 216
7. प्रो. यू.एन. तिवारी : प्रमुख शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 62 नितिन प्रिन्टर्स इलाहाबाद
8. प्रो. सत्य पाल रूहेला : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार पृष्ठ 236 अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
9. डॉ. ओ.पी. सिंह – शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 196 शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
10. गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर : शिक्षा पृष्ठ 311, 312
11. प्रो. सत्य पाल रूहेला : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार पृष्ठ 235 अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–2
12. रमन बिहारी लाल : शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार पृष्ठ 273 रस्तोगी पब्लिकेशन मेरठ।
13. डॉ. ओ.पी. सिंह : शिक्षा दर्शन एव शिक्षा शास्त्री पृष्ठ 198